वीर संवत २४९२, फाल्गुन कृष्ण १, सोमवार
दि. ०७-३-१९६६, ढाल-५, श्लोक-१३. प्रवचन नं. ४५

'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' है। 'छहढाला' में पाँचवी ढाल चलती है, पाँचवी की १३वीं गाथा है। देखो ! बोधिदुर्लभ भावना। बारह भावना का अधिकार है। बारह भावना, सम्यग्दृष्टि अपने स्वरूप के लक्ष्य से शुद्धि की वृद्धि के लिये (भाता है)। बारह भावनायें माता के समान कही गयी है। इन भावनाओं को सम्यग्दृष्टि अन्तर में स्वभाव के साधन द्वारा भाता है। समझ में आया ? यह बात कहते हैं। देखो !

अंतिम-ग्रीवकलौकी हद, पायो अनन्त विरियां पद;
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निजमें मुनि साधौ।।१३।।

क्या कहते हैं ? **अन्वयार्थ :- 'अन्तिम नववैं ग्रैवेयक तक...'** अनन्तबार आत्मा उत्पन्न हुआ है। अनन्तकाल में अनन्त भव करते हुए नरक के तो अनन्त भव किये, पशु के अनन्त किये, मनुष्य के अनन्त किये और स्वर्ग के भी अनन्त किये। कहाँ तक ? अन्तिम ग्रैवेयक-नौवां ग्रैवेयक होता है। जो पुरुषाकार यह चौदह ब्रह्माण्ड है, वह ग्रीवा स्थान है, यहाँ आगे नव देव के ग्रीवेक-पासड़ा है, वहाँ भी अनन्तबार आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना, शुभ क्रियाकाण्ड करके अनन्तबार स्वर्ग को प्राप्त हुआ। नरक में और पशु में गया तो पाप किया था, मनुष्य में और स्वर्ग में गया, वहाँ पुण्य (किया था)। उसमें भी

नौवें ग्रैवेयक गया, तब तो अनन्तबार जैनपना व्यवहार से प्राप्त करके दिगम्बर साधु होकर '**मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो...**' यह पहले आ गया है। चौथी ढाल में पाँचवी गाथा आ गयी है। यह पाँचवी ढाल चलती है। मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रैवेयक में उत्पन्न हुआ- इतने अनन्तबार भव प्रत्येक जीवने किये, परन्तु आत्मज्ञान की प्राप्ति के बिना उसे जन्म-मरण का अन्त कभी नहीं आया। कहो, समझ में आया ?

'**अन्तिम ग्रीवक लौं की हद,...**' हद। नौवें ग्रैवेयक तक (गया)। नरक में अनन्तबार, पशु में अनन्तबार, उस-उस स्वर्ग में अनन्तबार (गया), उस नौवें ग्रैवेयक में अनन्तबार उत्पन्न हुआ। कैसे भाव होंगे इसके ? पापभाव होंगे ? पुण्यभाव, बहुत पुण्यभाव, बहुत शुभभाव (किये)। दया के, दान के, व्रत के, ब्रह्मचर्य के, नग्नपना-दिगम्बरपना, अट्ठाईश मूलगुण (पालन किये), बहुत शुभभाव, शुक्ललेश्या (थी)। जिसकी चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे-ऐसी तो उसकी शुक्ललेश्या की क्षमा होती है। समझ में आया ? शुक्ललेश्या।

यह आत्मा, इस शुभ-अशुभराग रहित चैतन्यमूर्ति आनन्दकन्द है। उसका एक समय भी इसने ज्ञान नहीं किया। उस ज्ञान के बिना अनन्त जन्म-मरण (किये)। स्वर्ग में जाकर वापस गिरा, मनुष्य हुआ, पशु हुआ और वापस नरक में गया और निगोद में भी अनन्तबार (गया)। नौवें ग्रैवेयक जाकर वापस निगोद में अनन्तबार गया। सत्य होगा ? ऐसे शुभभाव किये। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा, महाव्रत, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण अनन्तबार किये, तब उसके फलरूप में स्वर्ग में (गया)। यह पहला पद है। '**अन्तिम ग्रीवक लौ की हद...**' हद अर्थात् मर्यादा। '**पायो अनन्त बिरियापद..**' अनन्त बार यह पद पाया। पर '**सम्यग्ज्ञान न लाधौ।**' एक सम्यग्ज्ञान, इस शुभ क्रियाकाण्ड से कुछ प्राप्त नहीं होता। आहा..! समझ में आया ? शुक्ललेश्या। कृष्ण, नील, कापोत-ये तीन तो पाप लेश्या है। पीत, पद्म, शुक्ल-ये तीन पुण्य लेश्या है। ऐसी शुक्ललेश्या भी अनन्तबार की और स्वर्ग को प्राप्त हुआ, परन्तु उस शुक्ललेश्या के द्वारा भी आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। समझ में आया ? इसलिए कहते हैं-'**सम्यग्ज्ञान न लाधौ,...**' अनन्तबार पद पाया, तथापि सम्यग्ज्ञान नहीं पाया। सम्यग्ज्ञान अर्थात् आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप, ज्ञायकभाव, ज्ञायकस्वभाव का ज्ञान। शास्त्रज्ञान नहीं, रागादि का ज्ञान नहीं, परपदार्थ का ज्ञान नहीं... परपदार्थ की कला तो अनन्तबार पाया, परन्तु यह

आत्मा चैतन्यज्योत सूर्य है-ऐसा अन्तर में एक क्षण भी सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति नहीं की। समझ में आया ?

'**सम्यग्ज्ञान न लाधौ...**' वहाँ चौथी ढाल में ऐसा कहा था। '**मुनिव्रतधार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो, पै आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।**' चौथी ढाल की पाँचवी गाथा में था। चौथी ढाल की पाँचवी गाथा है, देखो ! समझ में आया ? पृष्ठ ८३, ८३ है, हमारे गुजराती में इसमें ८३ पृष्ठ है, हाँ ! चौथी ढाल का पाँचवा श्लोक। कदाचित् तुम्हारे में पाँचवा होगा। यहाँ पाँचवा है, देखो !

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान विन कर्म झरैं जे;
ज्ञानी के छिन में त्रिगुप्तितैं सहज टरैं ते।।५।।

आत्मा के सम्यग्दर्शन और अनुभव के ज्ञान बिना करोड़ों भव में, करोड़ों वर्षों में, करोड़ो दीक्षा में, करोड़ों तप करे, करोड़ वर्ष तक (करे), तो भी जो कर्म नहीं खिरते, वे ज्ञानी के छिन में... आत्मा अन्तरस्वरूप में ज्ञानानन्द में गुप्त होकर, विकार-पुण्य-पापभाव की रूचि छोड़कर चैतन्य महान प्रभु परमात्मा अपना निज-अपना स्वरूप का ज्ञान करके क्षण में ज्ञानी कर्म को खिपाता है। कहो, समझ में आया कुछ ? यह लिया, देखो !

मुनिव्रत धार अनंत वार ग्रीवक उपजायौ;
पै निज आतमज्ञान विना, सुख लेश न पायौ।।५।।

यहाँ भी ग्रीवक लिया है। यहाँ सम्यग्ज्ञान लिया है, वहाँ आत्मज्ञान लिया है। यह तो एक की एक बात है। '**मुनिव्रत धार अनन्तबार...**' मुनिपना-दिगम्बर नग्नमुनि, अट्ठाईस मूलगुण पालन करनेवाला अनन्तबार हुआ। समझ में आया ? एक क्षण भी चिदानन्द आत्मा, राग की क्रिया से रहित, देह की क्रिया से रहित अकेला चैतन्य प्रभु आत्मा शुद्ध है, उसकी अन्तरदृष्टि-सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन नहीं किया। कहो, भाई ! यह गाथा अभी तुम्हारे ठीक आयी है। गाथा यहाँ मौके से आयी है। इसके पहले भी सब उसमें-चौथी ढाल में बहुत था। समझ में आया ?

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण;
इह परमामृत जन्मजरामृतिरोग निवारण।।४।।

चौथी ढाल में चौथा (श्लोक) है न ? '**ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण...**' वह ज्ञान कौन-सा ? आत्मा.. आत्मा चिदानन्द प्रभु शुद्ध आनन्दकन्द ज्ञायक है। भाई ! तुम्हारे पिताजी को ज्ञायक का बहुत था। तब ज्ञायक कहा था न ? ज्ञायक। ज्ञायक, बस। ऐसा बोले थे। पता है ? अन्त में ऐसा बोले थे। अन्त में, इसलिए तब वहाँ था। मैंने कहा था ज्ञायक, बस ज्ञायक, बस। आत्मा चैतन्य, ज्ञायकमूर्ति है। उसमें पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उत्पन्न हो, वह सब विकार है। वह आत्मा के हित के लिये बेकार है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य, चैतन्य को डली है। जैसे सफेदाई से भरी हुई खड़ी, क्षारपन से भरे हुए नमक की डली, मीठास से भरी हुई शक्कर, कड़वेपन से भरी हुई अफीम (है); वैसे ज्ञान और आनन्द से भरा हुआ भगवान है। आहा.. ! समझ में आया ? उसके स्वसन्मुख का ज्ञान एक समयमात्र भी नहीं किया। इस क्रियाकाण्ड में रुक गया और यह मुझे धर्म और यह मेरा कार्य-यह मेरा कर्तव्य। (-ऐसा मान लिया)। समझ में आया ?

कहते हैं-'**पै सम्यग्ज्ञान न लाधौ...**' ऐसे भाव अनन्तबार किये। क्यों ? '**दुर्लभ निज में मुनि साधो।**' भाषा देखो ! क्या कहते हैं ? मुनि ने आत्मा के साधन द्वारा अन्तर (में) सम्यग्ज्ञान साधा है। -ऐसा कहते हैं। दुर्लभ-ऐसा जो सम्यग्ज्ञान अनन्त काल में प्राप्त नहीं हुआ, वह '**निज में मुनि साधो।**' उसे आत्मा के स्वभाव द्वारा आत्मा को साधा। अर्थ में ऐसा है। '**मुनिराजों ने अपने आत्मा में धारण किया है।**' साधा है-ऐसा। स्वरूप का साधन, वह सम्यग्ज्ञान आत्मा द्वारा साधा-ऐसा कहते हैं। ऐसा कहकर क्या कहते हैं ? कि शुभ आदि राग की मन्दता, जो कषाय की मन्दता अनन्तबार हुई, उसके द्वारा आत्मसाधना सम्यग्ज्ञान नहीं हुआ। समझ में आया ? यहाँ मुनि क्यों लिये हैं ? कि बोधि है और बोधि में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्ण प्राप्ति है, उसका मुनियों ने अपने आत्मा द्वारा साधन किया है, निज में साधा है। इस राग से, व्यवहार से, विकल्प से, निमित्त से साधन साधता नहीं है-ऐसा कहते हैं।

मुनि की बात तीन की एक.. है न ? दर्शन, ज्ञान और चारित्र... परन्तु सम्यग्ज्ञान एक शब्द लेने से, वह ज्ञान भी आत्मा द्वारा, शुद्ध चैतन्यस्वरूप द्वारा वह स्वयं कर्ता और अपने शुद्ध स्वभाव द्वारा वह सम्यग्ज्ञान साधा है और साधा जा सकता है। कहो, भाई ! इसमें समझ में आया ?

यह देह की क्रिया जड़ की... यह परिणाम हिंसा, जूठ, चोरी, विषय-भोग, वह पाप; यह दया, दान, व्रत, तप की क्रिया का भाव वह शुभराग-पुण्य, उससे आत्मज्ञान और यह धर्म नहीं सधता। आहा..हा... ! यह तो सादी हिन्दी भाषा है। 'दौलतरामजी' कृत है। 'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला'। दौसो वर्ष पहले दिगम्बर पण्डित महातत्त्वदृष्टिवन्त (हो गये हैं)। उन्होंने कहा कि सन्त और अनन्त ज्ञानी, सर्वज्ञ परमेश्वर जो अनन्त हुए, अनन्त 'कुन्दकुन्दाचार्य' आदि महा दिगम्बर मुनि, महा धर्म के स्तम्भ-धर्म के स्तम्भ... समझ में आया ? समझ में आता है ? उन मुनियों ने भी ऐसा कहा और ऐसा साधा कि निज में '**दुर्लभ निज में मुनि साधौ।**' दुर्लभ कहकर क्या कहा ? कि अनन्त बार राग की, कषाय की मन्दता द्वारा वह प्राप्ति नहीं होती-ऐसा वह दुर्लभ है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! राग की, कषाय की मन्दता के शुभयोग द्वारा वह प्राप्त नहीं हुआ-ऐसा वह दुर्लभ है। आहा..हा... ! परन्तु उस शुभराग की मन्दता के भाव को भी उल्लंघ कर-छोड़कर, धर्मी जीव-'**निज में मुनि साधौ।**' यह सम्यग्ज्ञान, दर्शन-चारित्र आत्मा के अन्तर स्वरूप में साधन किया। अन्तर स्वरूप द्वारा साधन किया और अन्तर स्वरूप में साधा। है उसमें ? देखो ! कहाँ है ? है या नहीं ? भैया ! उसमें है या नहीं ? क्या है ? '**पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ।**'

अनन्तबार नौवें ग्रैवेयक गया, तब निज का साधन नहीं किया था-ऐसा हुआ न ? उसने पर साधन (किया)। उसका अनादि लक्ष्य पर.. पर... पर.. पर.. पर.. यह करुँ.. यह करुँ.. यह करुँ.. व्रत पालूं... भक्ति करुँ, पूजा करुँ, दान (दूँ)-ऐसे परलक्ष्यी शुभभाव परसन्मुखता में अनन्तबार किये, उसे निज सन्मुख की बात जहाँ आये, वहाँ उं.. हूँ (निषेध होकर) उसे एकदम उकताहट लगती है..यह क्या ? यह क्या ? अनन्तकाल में जिसका अभ्यास नहीं, इस कारण उसे (ऐसा लगता है कि) यह क्या ? यह ऐसा धर्म ? एक तो सुननेवाले को अनन्तकाल में यह बात सत्यपने की यथार्थरूप से सुनी नहीं, इसलिए सुनते ही उसे हैं। (हो जाता है)। ऐसे व्रत, तप से कोई धर्म नहीं होता ? परन्तु वह तो परसन्मुख की क्रिया का भाव है, सुन न ! समझ में आया ? सूक्ष्म बातें, भाई ! किसी दिन मुश्किल से सुनने में आती है न ? किसी दिन, भाई ! क्या कहा ?

यहाँ तो ढालकार-छहढालाकार 'दौलतरामजी' हैं। 'दोलतरामजी' कहते हैं कि निज की

दौलत के साधन के बिना, इस पर दौलत से साधन नहीं होता। समझ में आया ? ऐसा अनन्त सर्वज्ञों, अनन्त मुनियों-दिगम्बर सन्तों महामुनि हुए, उन्होंने इस प्रकार कहा है और इस प्रकार साधा है। दूसरी किसी क्रिया से आत्मा साधा जा सके या धर्म हो सके-ऐसा है नहीं। आहा..! (अज्ञानियों को) अन्दर ऐसा लगे अर..र..र..! यह तो व्यवहार का नाश हो जाता है। ऐ..ई...! भाई ! सुन तो सही, बापू ! यह व्यवहार अभी किसे कहना तुझे पता नहीं है।

आत्मा अखण्डानन्द प्रभु ज्ञान का सागर, आनन्द का सागर परमात्मा (है), उसका अन्तरध्यान, अन्तर निर्विकल्प शान्ति और आनन्दस्वरूप हूँ-ऐसा ज्ञान और श्रद्धा हो, तब उसे जो कुछ शुभभाव-दया, दान, भक्ति का होवे, उसे व्यवहारधर्म कहा जाता है। इसलिए पुण्य को व्यवहारधर्म कहते हैं, परन्तु निश्चयदृष्टि और धर्म होवे तो.. समझ में आया ? स्वसन्मुख में माहात्म्य है या नहीं ? पता नहीं ? कि अनादि से इस शरीर, वाणी और मन के ऊपर इसका लक्ष्य है; अधिक तो इसका लक्ष्य विकार पर जाता है, अन्दर परिणाम पर (जाता है)। शुभ और अशुभ, शुभ और अशुभ... यह भी विकार है। इससे आगे जाकर उसकी प्रगट अवस्था, प्रगट अवस्था-ज्ञान का उघाड़-क्षयोपशम, दर्शन का उघाड़, वीर्य का उघाड़। बस ! विकास, एक समय का विकास, बस ! इतना इसका स्वरूप (है-ऐसा) जानता है, ऐसा मानता है और इसका लक्ष्य ही वहाँ पर के ऊपर है, परन्तु यह ज्ञान के विकास का अंश है, वह त्रिकाल ज्ञातास्वरूप अन्दर गुप्त परमात्मा (है, उसका है)। गुप्त परमात्मा, गुप्त अर्थात् पर्याय में प्रगट नहीं, पर्याय में प्रगट नहीं, अप्रगट गुप्त पूरा तत्त्व चैतन्यरस... समझ में आया ? क्या कहा ?

'श्रीमद्' का वाक्य (आता है)-गुप्त चमत्कार सृष्टि को पता नहीं है, सृष्टि के लक्ष्य में, गुप्त चमत्कार है, उसका पता नहीं है। 'श्रीमद्'ने एक वाक्य लिखा है-गुप्त चमत्कार। एक सैकेण्ड के असंख्यभाग में वर्तमान विकास-उघाड़ एक अंश, दया, दान के परिणाम विकार; कर्म, शरीर आदि अजीव इनसे रहित अन्दर अनन्त गुण का पिण्ड जो गुप्त चमत्कार, जिसमें केवलज्ञान प्रगट हो, जिसमें से; जिसमें से अनन्त सिद्धदशा प्रगट हो-ऐसा गुप्त चमत्कार चैतन्य, सृष्टि के लक्ष्य में नहीं आता। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- ..

उत्तर :- गुप्त, गुप्त अन्दर है न ? ऐ..ई..! गुप्त अर्थात् पर्याय में प्रगट नहीं। यह स्पष्टीकरण हो गया। पर्याय में प्रगट नहीं। कल रात्रि में कहा था न ? अव्यक्त। पर्याय-अवस्था है, अवस्था है उतना प्रगट है और अवस्था बिना का पूरा तत्त्व, वह अप्रगट है, ध्रुव.. ध्रुव। समझ में आया ?

वस्तु है, पूरी चीज एक सैकेण्ड के असंख्य भाग में; वर्तमान दशा का भाव तो एक समय का है। राग है, वह विकार है; निमित्त है, वह परवस्तु है। अब इन तीन में प्रगटपना उसे ऐसे लगता है। यह उघाड़ है, वह मैं; राग, वह मैं, और यह संयोग, वह मैं परन्तु उसके पीछे अन्दर एक समय का जो विकार का अंश है, उसके पीछे पूर्ण अंशी पूर्णानन्द का नाथ चिदानन्द द्रव्य पड़ा है। उस द्रव्य के सन्मुख दृष्टि किये बिना इसे तीन काल में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नहीं होता और सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना इसके जन्म-मरण का कभी अन्त नहीं आता; मर जाए क्रियाकाण्ड करके। समझ में आया ? यह तो कहा, नौवें ग्रैवेयक तक गया अर्थात् ? कितना किया ? बारह-बारह महीने के अवास, बारह-बारह महीने। दूसरे देवलोक की इन्द्राणी विचलित करने आवे तो भी डिगे नहीं-ऐसा जिसका ब्रह्मचर्य ! परन्तु वह सब शुभराग। समझ में आया ?

अन्तर स्वरूप '**दुर्लभ निज में...**' 'निज में' शब्द पड़ा है न ? यह राग कोई निज नहीं है; पुण्य-पाप के परिणाम निजस्वरूप नहीं है। देह, वाणी, जड़, यह तो जड़स्वरूप है और एक समय का विकार उघाड़ है, वह एक समय की पर्याय एक अंश है, वह व्यवहार आत्मा है। समझ में आया ? पूरा तत्त्व निज भगवान ज्ञानानन्द का धाम चैतन्य सत्ता भगवान पूर्ण स्वरूप में साधन करना चाहीए, वह साधन किया नहीं। धर्मी जीव ने '**निज में मुनि साधो।**' आत्मज्ञान किया, आत्मदर्शन किया, आत्मशान्ति, चारित्र किया। किस में से ? निज में से। अन्तरमें से सम्यग्दर्शन और ज्ञान-चारित्र का साधन किया है। बाहर के साधन द्वारा वह साधन नहीं हो सकता। समझ में आया ? देखो न ! यह 'छहढाला' तो बहुत-सौं को कंठस्थ है न, भाई ! चलती है या नहीं ? सम्प्रदाय में बहुत चलती है। इसके अर्थ का भी पता नहीं होता।

'**मुनिराजों ने (निज में) अपने आत्मा में धारण किया।**' लो !

भावार्थ :- '**मिथ्यादृष्टि जीव (अनादि का) मन्दकषाय के कारण...**' राग की मन्दता की। दया, दान, व्रत, कषाय, ब्रह्मचर्य पालन किया तो '**अनेकबार ग्रैवेयक तक पैदा...**' हुआ। अनन्तबार नौवें ग्रैवेयक गर्दन के साधन पर जहाँ स्वर्ग है, (वहाँ) अनन्तबार उत्पन्न हुआ। '**अहमिन्द्र पद को प्राप्त हुआ है...**' अहम् इन्द्रि। नौवें ग्रैवेयक को देव सब अहमिन्द्र, ऋद्धि से, सिद्धि से लगभग सब समान-ऐसे अहमिन्द्र पद को अनन्तबार प्राप्त हुए (परन्तु) सम्यग्दर्शन के बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं आया।

'**परन्तु उसने एकबार भी सम्यग्ज्ञान प्राप्त नहीं किया...**' एक समय भी.. समझ में आया ? '**क्योंकि सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना, वह अपूर्व है...**' सम्यग्ज्ञान अर्थात् यह शास्त्र का पठन, वह नहीं। शास्त्र का पठन और दुनिया को कहना, समझना, वह कोई सम्यग्ज्ञान नहीं है। आहा..हा...! दूसरों को समझाने का विकल्प-राग उत्पन्न हो, वह कहीं सम्यग्ज्ञान नहीं है। समझ में आया ? अपूर्व सम्यग्ज्ञान-पूर्व में अनन्त भव में एक सैकेण्ड भी प्राप्त नहीं किया। पूर्व में किया, वह तो तब तक वह अपूर्व नहीं। सम्यग्ज्ञान एक समय भी अपूर्वरूप से अनन्तकाल में प्राप्त करना कठिन है। इसे प्राप्त करने की दरकार नहीं की है। आत्मा को पकड़ने की दरकार ही नहीं की है।

यह आत्मा क्या चीज है ? भगवान ! जिसमें से सिद्धपद निकले, जिसमें से अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और आनन्द की दशा (प्रगट हो), अतीन्द्रिय आनन्द की खान.. आहा..हा...! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द की खान, अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण-ऐसे अनन्त पूर्ण... पूर्ण आनन्द की खान, यह आत्मा है। भगवान जाने.. इसके सन्मुख होने की इसने दरकार ही (नहीं की है)। समझ में आया ? धर्म के बहाने भी त्यागी हुआ, वहाँ भी राग की मन्दता में रुककर धर्म मान बैठा, परन्तु राग की मन्दता के अतिरिक्त अविकारी भगवान आत्मस्वभाव का ज्ञान अपूर्व है।

'**इसीलिए उसे तो स्वसन्मुखता के अनन्त पुरुषार्थ द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।**' राग की मन्दता द्वारा या कषाय की बहुत हीनता करे, नरम स्वभाव करे, उससे वह प्राप्त हो-ऐसा नहीं है। अनन्त पुरुषार्थ (चाहिए)। अपना आत्मा प्रभुत्वगुण से भरपूर है, आत्मा परमेश्वरताके गुण से भरपूर है। आत्मा एक-एक गुण से परमेश्वर। ज्ञानगुण से परमेश्वर, दर्शनगुण से परमेश्वर, आनन्दगुण से परमेश्वर, शान्तिगुण से परमेश्वर, स्वच्छतागुण से परमेश्वर,

प्रभुतागुण से परमेश्वर, कर्तागुण से परमेश्वर, कार्यगुण से परमेश्वर... साधनगुण से परमेश्वर। आत्मा अपने साधनगुण से परमेश्वर है। आहा..हा... ! इस राग की साधन इसे आवश्यकता नहीं है-ऐसा यह परमेश्वर है। आहा.. ! साधनगुण से परमेश्वर, दान देने और लेने के (-संप्रदान) गुण से परमेश्वर, यह अपने आधार से प्रगट करे-ऐसा यह परमेश्वर.. आहा..हा... ! ऐसा परम ईश्वर प्रभु एक-एक गुण से परमेश्वर-ऐसे अनन्त गुण का प्रभु ऐसा आत्मा, उसमें अन्तर्मुख होकर आत्मा द्वारा सम्यग्दर्शन और ज्ञान का साधन होता है। निमित्त द्वारा, राग द्वारा, स्मरण द्वारा भी वह साधन नहीं होता। आहा..हा... ! कहो, भाई ! यह तो अब बहिनों को गुजराती समझ में आये ऐसा है या नहीं ? आहा..हा... !

'और ऐसा होने पर विपरीत अभिप्राय आदि दोषों का अभाव होता है।' अनादि से जो मान्यता कि राग और मन्दता का व्यवहार होवे तो धर्म होता है-ऐसा मिथ्यात्वभाव, मिथ्या अभिप्राय, मिथ्यादृष्टिपना, इस स्वसन्मुखता के अन्तर के साधन द्वारा, उस परसन्मुख से हुई राग की मान्यता (कि) इससे लाभ (होगा), इस मान्यता का नाश होता है।

मुमुक्षु :- ..

उत्तर :- एक समय में।

मुमुक्षु :- राग का भी परमेश्वर है।

उत्तर :- राग का नहीं, राग का नहीं। अनन्त गुण का परमेश्वर है। ज्ञान अनन्तगुण... ज्ञान में अनन्त स्वभाव है, उसका परमेश्वर है; राग का नहीं, विकार का नहीं। समझ में आया ? सहजात्म चिदानन्द स्वामी, उसमें एक शक्ति है-आत्मा में एक शक्ति है-स्वस्वामीसम्बन्ध शक्ति। सैंतालीस शक्तियों का वर्णन है न ? पढ़ी है न ? 'आत्मप्रसिद्धि' 'आत्मप्रसिद्धि' आती है न ? उसमें सैंतालीस शक्तियाँ है। स्वास्वामीसम्बन्धशक्ति। आत्मा में एक स्वस्वामीसम्बन्ध शक्ति नाम का परमेश्वर गुण है। परमेश्वर गुण। स्वस्वामी सम्बन्ध (अर्थात्) अपने आनन्दस्वरूप स्व का स्वामी-ऐसा उसमें स्वभाव है। राग, विकार और पर का स्वामी, वह गुण आत्मा में तीन काल में है नहीं। समझ में आया ? है न ? यह तो गुजराती है, परन्तु है न इसमें ? देखो ! अन्तिम ४७वाँ बोल है, सैंतालीस। देखो ! क्या कहते हैं ?

'**स्वभावमात्र स्व-स्वामीत्वयमयी सम्बन्धशक्ति। (अपना भाव, अपना स्व और स्वयं उसका स्वामी..)**' ऐसी शक्ति आत्मा में है, अनादि-अनन्त है। कैसा गुण ? कि भगवान आत्मा शुद्ध अनन्त गुण का स्व और उसका वह स्वामी-ऐसा उसमें गुण है। पुण्य-पाप के परिणाम का स्वामी अथवा पुण्य-पाप उसका स्व और उनका वह स्वामी-(ऐसा) उसके गुण में नहीं है, उसकी शक्ति में नहीं है, उसके स्वभाव में नहीं है। एक समय की पर्याय राग की, विकार को उत्पन्न करके स्वयं स्वामी होता है, वह मिथ्यादृष्टि, विकार का स्वामी होता है। समझ में आया ?

यहाँ तो स्व... पुण्य-पाप का भाव नहीं; शरीर, वाणी नहीं; स्त्री-पुत्र तो कहीं रह गये, धूल। ये इसका स्व नहीं। इसका स्व ज्ञायक, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, विभुता, प्रभुता आदि, वह अपना स्व अनन्त गुण-उसका यह स्वामी, उनका यह भगवान स्वामी है-ऐसा इसमें गुण है, परन्तु पुण्य-पाप का स्वामी और शरीर, कर्म का स्वामी और स्त्री-पुत्र व देश का स्वामी, वह तो मिथ्यादृष्टि, मिथ्याबुद्धि से मानता है, भाई ! आहा..हा... ! यह स्व-स्वामी सम्बन्ध आत्मा के स्वभाव के साथ है। एक विकल्प उत्पन्न हो, जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बँधे, वह भाव भी आत्मा का स्व और (आत्मा उसका) स्वामी, यह उसके गुण में नहीं है। आहा..हा... ! समझ में आया ? सैंतालीस शक्तियाँ हैं। 'आत्मप्रसिद्धि' बाहर (प्रकाशित) हो गयी है। अभी दूसरी शक्तियाँ (शक्तियों के प्रवचन) उतारी है, नये व्याख्यान रेकोर्डिंग हुए हैं अन्दर अभी। बाहर आये तब सही। समझ में आया ?

भगवान आत्मा '**निज में...**' है न ? अपने में अनन्त-अनन्त स्व-स्वामीसम्बन्ध नाम का गुण है। स्व-स्वामीसम्बन्ध-यदि आत्मा को सम्बन्ध होवे तो अपने शुद्ध स्वभाव के साथ आत्मा को सम्बन्ध है। आत्मा उसका स्वामी है और शुद्ध स्वभाव पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण प्रभुता-यह आत्मा का स्व। स्व अर्थात् धन, धन-स्वधन, उसका आत्मा स्वामी है। ऐसा गुण अनादिकाल से अनन्तकाल उसमें रहा हुआ है। ऐसे गुण को अन्दर स्पर्श किये बिना... समझ में आया ? सूक्ष्म, अद्भूत, भाई !

मुमुक्षु :- इस भावना में क्या निकालते हैं ?

उत्तर :- इस भावना में निकालते हैं, आनन्द। निजस्वरूप में अनन्त गुण का स्वामी (हूँ)। निज में-मुझ में, मेरे में शुद्ध पूर्ण आनन्द और ज्ञान, वह मुझ में है। ऐसे स्वरूप के अन्तर साधन द्वारा स्वरूप को साधता है। भावना करके उस शुद्धि की वृद्धि करताहै। समझ में आया ? यह भावना वह करता है। अहो..! यह वस्तु शान्ति और आनन्द का ज्ञान और भान अपूर्व है-ऐसे प्राप्त है, वह भी भावना करता है। भावना करने से शुद्धि की वृद्धि होकर अशुद्धता टलती है। इस भावना का फल शुद्धि है। समझ में आया ?

'**सम्यग्दर्शन-ज्ञान आत्मा के आश्रय से ही होते हैं।**' यह शीर्षक में '**निज में**' कहा वह। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र-ये आत्मस्वभाव के आश्रय से ही होते हैं; राग, निमित्त या पर के आश्रय से नहीं होते। 'पुण्य हो, शुभराग से, जड़ कर्मादि नहीं होते।' ऐसा वह स्वरूप नहीं है-ऐसा लेना। समझ में आया ? आहा..हा...! परन्तु इसे अन्तर का माहात्म्य नहीं आया, बाहर का माहात्म्य (आता है)।

हीरा और माणिक देखे तो आ..हा..! आहा..! उसमें से फिर शरीर सुन्दर हो तो आहा...! उसमें स्त्री सुन्दर होवे रूपवान तो.. आहा...! उसमें फिर लड़का अच्छा रूपवान होवे तो आहा..! परन्तु तू कहाँ.. आहा..! (करता है) ? क्या दिखता है ? पर है-ऐसा दिखता है। इसकी एक समय की पर्याय में अन्दर में वे आ कहाँ गये हैं ? आये हैं अन्दर ? किसका आहा..! हुआ तुझे ? और बहुत आगे जाए तो इसे पाप के परिणाम करे तो मजा आता है। आहा..! ऐसा बढ़कर आगे दया, दान, व्रत, भक्ति का शुभभाव करे, बस ! हो गया जाओ। अज्ञानी का तो आहा..! विकार में और पर में समा गया। समझ में आया ?

यहाँ तो आत्मा भगवान में, अपना निज परमेश्वरपद, पूर्ण, उस निज पद के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अन्तर्मुख से साधे जा सकते हैं, बहिर्मुखत के किसी साधन द्वारा उन्हें साधा नहीं जा सकता-ऐसा उसका स्वरूप ही है। यह तो उसका स्वरूप ही है। समझ में आया ?

'**इस जीव ने बाहर के संयोग...**' देखो ! यह बाहर के संयोग। यह '**चारों गति के लौकिक पद अनन्तबार प्राप्त किये हैं...**' अनन्तबार प्राप्त किये हैं। अरबोंपति अनन्तबार हुआ, चार गतियों में अनन्तबार गया, बाहर के अनुकूल-प्रतिकूल संयोग अनन्तबार प्राप्त किये-यह

नयी बात नहीं है। यहाँ तो जहाँ जरा-सी प्रतिकूलता आये, वहाँ चिल्लाता है। अनन्तबार प्रतिकूलता आयी और अहमिन्द्र जैसी अनुकूलता भी अनन्तबार आयी। आहा..! समझ में आया ? अरे..! जहाँ सिद्ध भगवान बिराजते हैं, वहाँ भी निगोदरूप से अनन्तबार गया। ठीक है ? सिद्ध भगवान बिराजते हैं न ? वहाँ भी निगोदरूप से अनन्तबार अवतार हुए, सिद्ध के पेट में।

मुमुक्षु :- ..

उत्तर :- देखे कहाँ ? धूल। स्थान में उत्पन्न हो आया है। इसे भान कब था वहाँ ? आहा..हा...! परन्तु इसने इस निजपद पर दृष्टि नहीं की।

मुमुक्षु :- ..

उत्तर :- धूल में भी हवा नहीं आती कुछ। कैसे जँचे ? केवलज्ञानी भगवान होते हैं, समुद्घात होता है न ? क्या (कहा) ? केवलज्ञानी परमात्मा होते हैं न ? तब उन्हें समुद्घात होता है। अन्त में मोक्ष जाने पर वेदनीय, नाम जरा आयुष्य से अधिक रह गया होवे तो कम करने के लिये एकदम समुद्घात.. पूरे लोक में प्रदेश करते हैं, फैलते हैं; वे प्रदेश सातवें नरक में रवरव नरक है, वहाँ भी उस समय पड़े होते हैं। है दु:ख उन्हें ? नजदीक है न समीप में ? इसी तरह उनका (परमात्मा के प्रदेशों का) सुख उन्हें-नारकियों को है ? भाई ! क्या कहा ? ऐसे आत्मा है न ? जब केवल(ज्ञान) प्राप्त करते हैं, फिर पूरे लोक प्रमाण समुद्घात होता है, तब उनके प्रदेश आत्मा के असंख्य प्रदेश फैलकर सातवें नरक में पूरे लोकप्रमाण फैलते हैं। एक, दो समय वहाँ रहते हैं। उस समय सातवें नरक के नारकियों में केवलज्ञानी के प्रदेश का आत्मा है। उन केवलज्ञानी को अनन्त आनन्द का अनुभव है, साथ में रहे नारकी को अनन्त दु:ख का अनुभव है। इस अनन्त दु:ख का अनुभव केवली को नहीं और केवली के अनन्त सुख का (अनुभव नारकी को नहीं)। है एक क्षेत्र में एकसाथ.. समझ में आया ? सातवां नरक.. नारकी का बिल है न ? भगवान का समुद्घात वहाँ (भी) होता है, वहाँ प्रदेश हैं। वे अपने आनन्द का अनुभव करते हैं। वे ही वहाँ नारकी उसी क्षेत्र में मिथ्यादृष्टि अनन्त अनन्तानुबन्धी दु:ख का अनुभव करते हैं। समीप क्षेत्र से क्या लाभ है ? समझ में आया ? अपने समीप क्षेत्र में जाए तो लाभ होता है। आहा..हा...!

कहते हैं, अरे..! '**लौकिक पद अनन्तबार प्राप्त किये...**' स्वर्ग भी अनन्त बार प्राप्त किया, सेठपना भी अनन्तबार प्राप्त किया, अरबोंपति-एक-एक दिन में अरबों की आमदनी अनन्तबार हुई। धूल में, उसमें आत्मा को क्या मिला ? आत्मा को मिला दु:ख, ममता। यह मुझे मिला-ऐसी ममता (मिली)। दु:खी... दु:खी.. दु:खी (हुआ)। कहते हैं, '**परन्तु निज आत्मा का यथार्थ स्वरूपस्वानुभव द्वारा प्रत्यक्ष करके उसे कभी नहीं समझता...**' शास्त्र को धारण किया, पढ़ा परन्तु इस भगवान को (इसने नहीं जाना)। आठ-आठ वर्ष की बालिका भी सम्यग्ज्ञान प्राप्त करती है। मेढ़क इतने, वह भी सम्यग्ज्ञान पाता है। भगवान के समवसरण में जाता है और ऐसे सुनता है ओ..हो..हो..! जैसे झटपट बिलजी ऊपर से उतरे और तांबे के सरिये में नीचे उतर जाए (ऐसे) यह सुने कि तू अनन्तगुण का पिण्ड प्रभु शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द है, तेरा स्वरूप राग से निराला है, तू मेरे जैसा परमेश्वर है-इस प्रकार जहाँ भगवान की वाणी सुने, वहाँ एकदम उतरा, झपट करके अन्दर, एकदम उतरे अन्दर। एक मेढ़क होवे या आठ वर्ष की कन्या होवे, समकित पा जाती है। लो! परन्तु निज स्वरूप से पाते हैं, पर से नहीं पाते। यह भगवान का सुना, इसलिये प्राप्त हुआ ऐसा नहीं है। वहाँ से लक्ष्य छोड़ दिया और अन्तर में गया, प्रवेश किया। दरबार-चैतन्य का दरबार आत्मा में है। अनन्त गुण का दरबार भगवान, उस दरबार में अन्दर सभा में प्रवेश किया। उस निज स्वरूप से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान साधा जा सकता है, बाकी कोई उसका साधन हैनहीं।

मुमुक्षु :- बिजली ऐसी इच्छा..

उत्तर :- ऐसी बिजली यहाँ जोरवाली है आत्मा में। दृष्टान्त बिजली का दिया। ऐसा बिजली का चमत्कार जोरदार है, वीर्य को ऐसे अन्दर में प्रस्फुटिक किया, ... एकदम शीघ्रता करके। इस आत्मा के स्वभाव के साधन द्वारा ही सम्यग्ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। उस सम्यग्ज्ञान में ही जन्म-मरण का अन्त है। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार से जन्म-मरण का अन्त नहीं आता है।

'**इसलिए उसकी प्राप्ति अपूर्व है, लौकिक कोई भी पद अपूर्व नहीं है।**' यहाँ जरा पाँच हजार का वेतन हो और कुछ धूल हो वहाँ तो आहा..हा..हा...! ऐसा हो जाता है, लो !

मुमुक्षु :- संध्या का बल..

उत्तर :- संध्या का बल क्या ? हाँ, हाँ, ठीक ? पैर नीचे नहीं रहते, उस समय फिर ऊंचा चलता है। पैसा बहुत बढ़े न कि ऐसे ऐसे धम.. धम.. धम.. धम.. (चलता है)। दु:ख में ऊँचा चलता है। चौबीस घण्टे दु:ख है। भगवान आत्मा के अन्तर ज्ञान के सुख बिना जितना यह शुभ और अशुभभाव में रुकता है, चौबीस घण्टे उस दु:ख का वेदन निरन्तर है। कहो, ठीक है ? चौबीस घण्टे। भाई ! चौबीस घण्टे ?

मुमुक्षु :- सो जाए तब ?

उत्तर :- सो जाए तब, सोता है, किस में सोता है ? विकारभाव में पड़ा है और सोता है। आत्मा, पुण्य-पाप के विकल्परहित स्वस्वरूप के ज्ञान का भान, वह सुख है। इसके बिना जितने परसन्मुखता से शुभाशुभभाव अनन्तबार, असंख्य शुभ और असंख्य अशुभ, एक-एक अनन्तबार, एक-एक (प्रत्येक) अनन्तबार किये, (वह) सब दु:ख है। समझ में आया ? यह एक अपूर्व है, जिसमें सुख है।

भगवान आत्मा ! उसकी श्रद्धा तो करे, उसके वीर्य को अन्तर में झुकाने जैसा है-ऐसा तो निर्णय करे। बाहर में वीर्य झुकाने से तेरा कभी भला नही हुआ। समझ में आया ? वह झुकाव बदले। वलण, वलण कहते हैं या क्या कहते हैं तुम्हारे ? झुकाव। झुकाव, झुकाना। इस पानी का बहाव दूसरे किनारे है, इसकी अपेक्षा इस किनारे लो-ऐसा कहते हैं। यह बहिने नदी से पानी भरती हैं न ! बड़ी नदी होवे तो दूसरे किनारे पानी (होवे तो बोले) अर..र..र..! कितनी (दूर) भरने जाना पड़ता है, बापा ! 'कालुभार' जैसी नदी है, बड़ी नदी, समुद्र जैसी। उस किनारे पानी (होवे और वहाँ) जाए तो इस ओर की बहिने शोर मचाती है। अरे..! वहाँ भरने जाना। इस किनारे पानी होवे तो एकदम ऊपर बहेड़ा (चरी) भरकर आवे, लो ! ऐसे तेरे आत्मा का प्रवाह विकार और पुण्य-पाप में गया, उस दूसरे किनारे तेरा प्रवाह दु:खदायक है। समझ में आया ?

कहते हैं, इस ओर प्रवाह झुका, भाई ! पहले कहा था न ? **'लाख बात की बात निश्चय उर आणो-'** नहीं आया था ? पहले आया था। लाख बात की बात। यह स्वयं कहते हैं। कौन ? **'लाख बात की बात निश्चय उर आणो-'** है न ? कितने में आया है ? ऐ..ई..! लाख बात की बात। उसमें ही था या नहीं ? चौथी ढाल की नौवीं (गाथा) देखो ! **'पुण्य-पाप फलमाहि हरख**

बिलखों मत भाई;...' यह 'छहढाला' स्वयं कहते हैं।

पुण्य-पाप फलमांहि हरख बिलखौं मत भाई;
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।
लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;
तोरी सकल जगदंद-फंद, नित आतम ध्याओ।।९।।

भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप प्रभु की रुचि कर, उसके सन्मुख जा और विकार से विमुख हो। - यह तेरे सुख का कर्तव्य है। समझ में आया ? इस सुख के आचरण का यह भाव है; बाकी सब दुःख के आचरण के भाव है। स्वयं कहते हैं, देखो ! 'दौलतरामजी' आहा..हा..! एक ही बात। इसमें भी अर्थ नहीं समझते और विरोध करते हैं, लो ! नहीं, इसका अर्थ सही नहीं, सही नहीं... परन्तु यह सही नहीं, तब सही क्या है ? अब लाओ न। भगवान आत्मा, अनन्त गुण की खान (है), उस ओर झुकना, यही सही है, दूसरा फिर सही क्या था ? समझ में आया ?

इसलिए कहते हैं कि लौकिक पद तो अनन्तबार प्राप्त हुए, परन्तु आत्मपद एक सैकेण्ड भी प्राप्त नहीं हुआ। एक सैकेण्ड भी सम्यग्ज्ञान प्राप्त होवे तो इसके जन्म-मरण का अन्त आ जाए; और शुभभाव अनन्तबार किये (तो भी) एक भव कम नहीं हुआ। परन्तु उसमें कम कहाँ से हो ? साधन है वह ? शुभभाव अनन्तबार किया, (परन्तु) एक भव कम नहीं हुआ और शुभभाव रहित आत्मा (का) एक समय का ज्ञान सम्यक् चैतन्य भान होने पर अनन्त भव गल गये। समझ में आया ? ऐसी सम्यग्ज्ञान में अथवा निज स्वरूप के साधन में ताकत है, दूसरे में वह ताकत नहीं है।

'बोधि अर्थात् निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता, उस बोधि की प्राप्ति प्रत्येक जीव को करनी चाहिए।' तीन बोल है न एक साथ ? उस बोधि की व्याख्या। **'सम्यग्दृष्टि जीव स्वसन्मुखतापूर्वक ऐसा चिन्तवन करता है...'** चिन्तवन शब्द से आत्मा की ओर की एकाग्रता। जो आत्मा शुद्धस्वभाव दृष्टि में रुचि में आया है, उसके ओर की एकाग्रता को भावना कहते हैं। **'और अपनी बोधि की वृद्धि का बारम्बार अभ्यास करता है, यह बोधिदुर्लभभावना है।'** इसका नाम बोधिदुर्लभ भावना है।

कहो, इसमें कहीं पैसा दुर्लभ है-ऐसा नहीं आया। यह इन्द्रपद, यह ग्रैवेयक पद दुर्लभ है-ऐसा नहीं आया, यह पुण्यपरिणाम दुर्लभ है-ऐसा नहीं आया, यह पुण्यभाव दुर्लभ है-ऐसा नहीं आया, आहा..! यह पुण्य और पाप तथा पुण्य-पाप का बन्धन और बन्धन के फल से रहित आत्मा का ज्ञान करना ही दुर्लभ और अपूर्व है। इसे दुर्लभ कहा है, लो! समझ में आया ?

एक व्याख्या आती है न ? 'तत्त्वज्ञान तरंगिणी' में, भाई ! बाह्य संयोग प्राप्त होना सुलभ है, क्योंकि अनन्तबार प्राप्त हुए। बाह्य सामग्री-स्वर्ग, पैसा, राज आदि मिलना, वह सरल है, क्योंकि अनन्तबार हुए हैं; एक आत्मा के स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान की प्राप्ति दुर्लभ है। समझ में आया ?

दूसरे प्रकार से कहने पर बात गुलाँट खाती है कि भाई ! यह पुण्य-पाप और पैसा आदि,यह पैसा आदि मिलना, वह दुर्लभ है; क्योंकि तेरे पुरुषार्थ से नहीं मिलते; वे तो पुण्य होवे तो मिलते हैं, इसलिए दुर्लभ है। तुझसे प्राप्त नहीं होते। फिर से, भाई ! यह पैसा और राजपाट दुर्लभ है। क्यों ? दुर्लभ अर्थात् तुझसे उनकी प्राप्ति नहीं होती, वे तो पूर्व का पुण्य होवे तो प्राप्त होते हैं; इसलिए इस अपेक्षा से दुर्लभ कहे हैं। दुर्लभ अर्थात् दुःख से भी तू पुरुषार्थ से प्राप्त कर सके-ऐसे वे पैसा और लक्ष्मी नहीं है। आहा..हा..! यह दुर्लभ कहा, फिर आत्मा को सुलभ कहा। बात गुलाँट खाती है। आत्मा सुलभ है। क्यों ? कि जिसमें पर के साधन की आवश्यकता नहीं पड़ती। ठीक !

दो बातें की है-'तत्त्वज्ञान तरंगिणी' है। एक तो दुर्लभ आत्मा का स्वभाव, क्योंकि अनन्त काल से प्राप्त नहीं किया। सम्यग्दर्शन, अनुभवदृष्टि अनन्तकाल से (प्राप्त नहीं किया), इसलिए दुर्लभ कहा और यह लक्ष्मी आदि प्राप्त होना सुलभ है। यह दुर्लभ तो (लक्ष्मी आदि) सुलभ। अब बदला-यह दुर्लभ, वह सुलभ। क्यों ? ये चीजें दुर्लभ हैं, क्योंकि तेरे पुरुषार्थ से प्राप्त होवे-ऐसी नहीं है। ठीक है ? लाख प्रयत्न करे, मर जाए तो भी मिलने को है, वही मिलेगी; तेरे पुरुषार्थ से नहीं मिलेगी; इसलिए दुर्लभ अर्थात् तेरे प्राप्त हो-ऐसी नहीं है। भाई ! भगवान आत्मा सुलभ है। क्यों ? कि जिसे शरीर, वाणी, मन की भी आवश्यकता नहीं है और जिसे पुण्य-पाप के राग की भी आवश्यकता नहीं है; पर के आश्रय की आवश्यकता नहीं, स्व-स्व के आश्रय की आवश्यकता (है तो) स्व तो स्वयं है, इसलिए अपना दर्शन-ज्ञान, वह अपने आश्रय से होता है,

इसलिए वह सुलभ है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- यह प्रेम इसे स्वयं को होवे, तब लगे न ! कहो, इसमें समझ में आया ? आहा..हा..! 'तत्त्वज्ञान तरंगिणी' (में) ऐसी बात ली है। इस प्रकार दो उलट-पुलट। बापू ! आत्मा की दृष्टि और अनुभव करने में कोई लक्ष्मी की हानि होती है इसमें ? शरीर घिसावट होती है ? शरीर का बल उसमें काम करता है ? पर की उसमें आवश्यकता पड़ती है ? वहाँ पर का आश्रय लेने का कोई काम है ? समझ में आया ? आहा..!

अपना स्वभाव, एक नज़र करते ही नजराना मिले-ऐसी चीज है। जिसकी नज़र करने से निधान प्रगट हो, वह तो स्वाधीन तुझे सुलभ है। समझ में आया ? परन्तु दुर्लभ मानकर बैठा है। यह दुर्लभ कहा, वह तो अनन्तकाल में प्राप्त नहीं हुआ-इस अपेक्षा से कहा है। समझ में आया ? परन्तु अपना निजपद है, उसमें कहीं पैसे की जरुरत पड़ती है ? कि इतने पैसे हों और दान-बान दूँ तो मुझे आत्मलाभ होगा। भाई ! उसमें कुछ आवश्यकता पड़ती है या नहीं ? ठीक कहते हैं, बापा ! यह तेरा पद तो तेरे लिये सरल और सुलभ है, कि उसमें तुझे बाहर के किसी भी आधार या अवलम्बन लेने की आवश्यकता नहीं है। मन की जरूरत नहीं है, वाणी की जरूरत नहीं है तो फिर शरीर और अमुक की कहाँ जरूरत थी ? ऐसा भगवान आत्मा...

मुमुक्षु :-...

उत्तर :- इसे दृष्टि, रुचि, प्रविष्ट नहीं होती, रुचता नहीं। यह बाहर का रुच गया है। रुचि, पुण्य-पाप में ऐसा प्रेम लगा है कि यदि इनसे हट जाऊँगा न तो मुझे हाय ! हाय ! डूब जाएगा। और इस पुण्य-पाप के फलमें से जरा कुछ कम हो, एक तम्बू बड़ा होता है न ? ऊँची होती है न ? ऐसे कील की हुई; और उसमें से एक कील ढीली पड़े तो चिल्लाता है। यह ढीली कैसे पड़ी ? उसमें पूरा तम्बू उड़े तो क्या होगा इसे ? इसी प्रकार बाहर की अनुकूलता में एक भी कुछ कभी, पोने सोलह आने होवे तो चिल्लाता है। मूढ की मूढता का कोई दूसरा अलग लेख होगा ? एक जरा ऐसा (आवे तो) ऊँ..ऊँ... (करे), क्या है परन्तु ? तम्बू है न ? वे अंग्रेज नहीं रहते ? अंग्रेज-युरोपियन उतरते हैं न ? बाहर जंगल में, कीले डाले गहरी, ऐसे खींचकर बाँधे।

पानी-बानी वर्ष गिरे तो ऐसी चली जाए-ऐसा ढाल होता है, ऐसे ढल पड़े। ढल पड़ जाए तो पानी अन्दर पड़े। एक पूरी कील न निकली हो, जरा-सी कील अन्दर कुछ ढीली पड़ी होवे (तो कहते हैं) ऐ.. ! ढील क्यों पड़ी वहाँ ?

इस प्रकार बाहर की धूल की सुविधा के अंश में एक जरा-सा फेरफार होवे (तो) बन्दर की तरह रोये। एक पत्ते का कंकर ऊपर से गिरे (और रोवे) ऐसे रोवे। अरे... ! प्रभु ! परन्तु वह कोई साधन नहीं है, तुझमें नहीं है और तुझे रोकते नहीं है। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि अन्तिम 'दुर्लभ' शब्द आया न ? आहा..हा... ! भाई ! तेरा स्वरूप तो तेरे पास है न ! **'नजर ने आलसे रे, तें नयने न नीरख्या हरि, तारी नजरने आलसे रे नीरख्या न नयने हरि।'** हरि (अर्थात्) आत्मा। भगवान स्वयं ऐसी नजर पर में करके बैठा, वह पर में से पलक नहीं उठाता। कहते हैं कि एक बार तू ऐसे देख। एसे तो देख ! एक भगवान बिराजता है, महा परमात्मा। ... अच्छा मनुष्य आवे तो दूसरे के साथ बात करना छोड़ देता है, उसके साथ बात करता है, दूसरा छोड़ देता है। ... खाना-पीना छोड़ देता है। आओ.. आओ... आओ.. साहब आओ.. आओ.. करता है या नहीं ?

एक ग्राहक पचास-सौ (रूपये की) आमदनी करानेवाला देखे तो मानों कि यह (आमदनी करा देगा)। (दरबार आवे तो कहे), आओ.. आओ.. दरबार ! दूसरे ग्राहक पड़े रहे एक ओर। ... ऐसा तीन लोक का नाथ परमेश्वर, उसके साथ बात करना छोड़कर दूसरों के साथ बात करता है तू यह ? समझ में आया ? ऐसा तेरा परमेश्वरपद निज में पड़ा है। उसका साधन तेरे पास है। बाहर के साधन द्वारा तू स्वरूप का साधन लेना चाहता है, भाई ! नहीं मिलेगा। समझ में आया ? ऐसी बोधि-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति और तीनों का यथार्थ ज्ञान (करना)। उसकी प्राप्ति तुझे दुर्लभ कही गयी है, क्योंकि परसन्मुख से दृष्टि नहीं हटाता इसलिए। स्वसन्मुख करे तो यह बात स्वयं को सुलभ है। (विशेष कहेंगे...)

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)